भारतीय रंगमंच की गौरवशाली जनपक्षीय परंपरा का विध्वंस है मोदी सरकार का नाटक ओलिम्पिक

राजेश चौधरी

सत्ता के साये में, और भ्रष्ट गठजोड़ से होने जा रहे थियेटर ओलम्पिक्स के नाम पर एनएसडी प्रशासन, निदेशक वामन केन्द्र और पूर्व अध्यक्ष रतन थियाम ने नाटकों के चयन से ही भ्रष्टाचार, ब्राह्मणवाद, भाई-भतीजावाद और मनमर्ज़ी के मामले में पिछले सभी रिकॉर्ड ध्वस्त कर दिये हैं और मेरे तमाम आकलनों को सत्य साबित कर दिया है! यह तब है, जबकि अभी आयोजन शुरू भी नहीं हुआ है।

मैं इस बात को लेकर मुतमइन हूं कि भारत रंग महोत्सव की कब्र खोदने वाला यह ओलम्पिक्स देश के रंगमंच की तमाम उत्कृष्टताओं और उपलब्धियों को न केवल मटियामेट करने वाला है, बल्कि यह पूरी दुनिया में देश की रंग-संस्कृति की बेहद बुरी छवि निर्मित करने जा रहा है। इस ओलम्पिक्स के बाद देश के रंगमंच में उपभोक्तावादी-मुनाफ़ाख़ोर प्रवृत्तियों का पूर्ण वर्चस्व क़ायम हो जायेगा, सभी मंचों एवं अवसरों पर दलालों-ठेकेदारों का कब्ज़ा होगा तथा देश में सामान्य रंगकर्मियों के लिये कार्य-स्थितियां बदतरीन हालत में पहुंच जायेंगी और रंगमंच पचास साल पीछे चला जायेगा।

विभिन्न राज्यों से जिस प्रकार की सूचनाएं प्राप्त हो रही हैं, उनसे उपरोक्त भविष्य की तस्वीरें अब साफ़ होने लगी हैं। सूचनाओं के अनुसार :-

(1) प्रत्येक शहर से अधिकांशत: उन्हीं लोगों के घटिया नाटकों को चुना गया है, जो वामन केन्द्रे और रतन थियाम का दरबार करते हैं, उनकी भ्रष्ट गतिविधियों का बचाव करते हैं और उनकी खुशामद के लिये सदा तत्पर रहते हैं।

(2) प्रत्येक शहर के ऐसे नाटकों को पहले ही चयन-प्रक्रिया से बाहर कर दिया गया है, जिनसे जुड़े निर्देशक या कलाकार रंगमंच के सांस्थानिक भ्रष्टाचार के प्रति आलोचनात्मक या विरोधी रुख प्रदर्शित करते रहे हैं।

(3) उन्हीं लोगों के नाटकों को चयन में प्राथमिकता मिली है, जिनके नाटक भारत रंग महोत्सव में आते रहे हैं। कई ऐसे नाटकों को भी शामिल कर लिया गया है जो विगत वर्षों में बार-बार भारंगम में मंचित हो चुके। उनमें से कई तो दर्शकों द्वारा नकारे भी जा चुके हैं।

(4) एक ही नाटककार के एक ही नाटक को दो-दो राज्यों से चुन लिये जाने की सूचना है, जबकि वह नाटक कथ्य और प्रस्तुति के औसत स्तर को भी स्पर्श नहीं करता! यहां नाटककार की सत्तानिष्ठता और वामन केन्द्रे से व्यक्तिगत मित्रता के अलावा चयन का अन्य कोई आधार नहीं दिखायी पड़ता! ये नाटककार हिन्दी क्षेत्र में अपनी जुगाड़ टेक्नोलॉज़ी के कारण सदा मलाई तक पहुंच बनाये रखने के लिये खासे प्रसिद्ध हैं!

(5) वामन केन्द्रे और रतन थियाम ने देश भर से अपने तमाम निजी मित्रों, प्रशंसकों और शिष्यों के नाटकों को ओलम्पिक्स के लिये चयन-प्रक्रिया से बाहर रखा और आमंत्रित कोटे के पिछले दरवाज़े से उन्हें शामिल कर लिया है! इन सभी प्रस्तुतियों को आयोजन में वीवीआईपी ट्रीटमेंट (रिपीट शो के तोहफ़े के साथ!) मिलना तय है।

(6) आयोजक एनएसडी ने जान-बूझ कर नाटकों के चयन का आधार (क्राइटेरिया) गुप्त रखा, ताकि कोई उसको लेकर सवाल न उठाये। अगर कोई सवाल बाद में पूछा भी जाये तो वे हर बार किसी नाटक को चुनने या रिजेक्ट करने का मनमाना तर्क दे सकें, यह सुविधा रखी गयी!

(7) नाटकों की चयन समिति के चुनाव को लेकर वर्षों के हल्ला-हंगामे और विरोध को दरकिनार करते हुए एनएसडी ने इस बार फिर मनमर्ज़ी के लोगों को लेकर चयन समिति बना ली, चयन का आधार गुप्त रखा और उन लोगों के नाम, उनकी योग्यता और अनुभव के बारे में रंगजगत को पूरी तरह अंधेरे में रखा। कोई भी यह नहीं बता सकता कि जो लोग ओलम्पिक्स के लिये नाटकों की गुणवत्ता परख रहे थे, उनकी क़िस्मत का फ़ैसला कर रहे थे, उनको रंगमंच की एबीसीडी भी ठीक ढंग से मालूम है या नहीं!

(8) सबसे हैरत की बात हमेशा से यह रही है कि एक सप्ताह-दस दिन में कैसे कोई पैनल प्रतिदिन चालीस से पचास नाटकों की डीवीडी देख लेता है और तय कर लेता है कि फलां नाटक उच्च गुणवत्ता का और सार्थक है! रंगजगत शायद कभी इन सुपरमैनों का रहस्य नहीं जान पायेगा!

(9) आख़िर इस सवाल का जवाब कौन देगा कि नाटकों की चयन समिति में जिन लोगों को शामिल किया गया, उसमें सभी राज्यों और भाषाओं को समान या उचित प्रतिनिधित्व मिला या नहीं? दिल्ली में बैठा कोई मीडियॉकर कैसे यह तय लेता है कि पटना, लखनऊ, भोपाल, उज्जैन, बेगूसराय, गुवाहाटी, चंडीगढ़, रायगढ़, जम्मू, हैदराबाद, इम्फाल, मुम्बई और कोलकाता का कौन-सा नाटक और निर्देशक श्रेष्ठ है? और क्या बिहार का मतलब केवल पटना है? बंगाल का कोलकाता? महाराष्ट्र का मुम्बई? यूपी का लखनऊ? एमपी का भोपाल? मणिपुर का इम्फाल? असम का गुवाहाटी? क्या राजधानियों से बाहर का रंगमंच महत्व नहीं रखता? भयावह है यह सब।

(10) एनएसडी ने भ्रष्टचार की एक ज़बरदस्त कार्यविधि विकसित की है! वह अपने हर निर्णय की जानकारी समय गुज़र जाने के बाद और टुकड़ों -टुकड़ों में देती है! अभी तक कोई नहीं बता सकता कि ओलम्पिक्स के लिये किस शहर से कितनी और किन-किन प्रस्तुतियों का चयन किया गया है! यह सूचना फेसबुक के माध्यम से केवल तब मिल पाती है जब कोई निर्देशक अपने नाटक के चुने जाने और प्रदर्शन से जुड़ी अन्य सूचनाएं साझा कर रहा है! कमाल का तरीक़ा निकाला है! कोई आधिकारिक घोषणा अंत तक करनी ही नहीं है। न सूचना होगी न विरोध होगा! जब होगा तब आयोजन के शोर में खो जायेगा!

आने वाले कुछ महीने भारतीय रंगमंच के लिये आज़ादी के बाद सबसे विनाशकारी साबित होंगे। अगर आप अब भी चुप रहते हैं तो बाद में बोलने का कोई अर्थ नहीं रह जायेगा। आपको अपनी लड़ाई लड़ने के लिये स्वयं आगे आना होगा। विरोध की ताक़त पहचाननी होगी। चीखना भी पड़ेगा। किसी और के इन्तज़ार में आपका वक़्त गुज़र जायेगा दोस्तो। इसलिये गला साफ़ कीजिये और आवाज़ उठाइये!

बाज़ारूपन और अपसंस्कृति का 'ओलम्पिक्स'!

रंगकर्म को रोटी, सम्मान और विचार चाहिये, लेकिन व्यापारियों को केवल बाज़ार! जिसे खाने को नहीं मिलता, जिसकी जेब ख़ाली है, जिसकी पत्नी निरंतर अभावों से त्रस्त होकर मैके चली गयी है, जिसके बच्चे की आंखों में पिता के लिये घृणा है, और वह सरकारी स्कूल में लाचारी पढ़ रहा है, उसको बाज़ार नहीं सूझता। ओलम्पिक्स ऐसे लोगों की ज़िन्दिगियों में क्या बदलाव लेकर आयेगा भला?

और हम यह भी जानते हैं कि देश के सुदूर शहरों, गांवों-कस्बों में इन स्थितियों में रंगकर्म करने वाले लोगों की तादाद बहुत बड़ी है। वे कुल आबादी के पंचानवे फीसदी होंगे। भारत रंग महोत्सव या ओलम्पिक्स का फ़ायदा महज़ पांच फीसदी रंगकर्मी ही उठा पाते हैं। शेष पंचानवे फीसदी तो उनके जाड़ों के लिये अपनी पीठ पर ज़िन्दिगी भर ऊन की फ़सल ढोते रहने को विवश हैं। इसे ही नियति मान बैठे हैं, क्योंकि उन्हें विश्वास हो गया है कि पांच फीसदी लोगों ने पंचानवे फीसदी संसाधनों पर कब्ज़ा जमा रखा है, और सत्ता उनके ही इशारों पर नाचती है।

आंखें खोल कर देखिये तो रंगकर्म में आपको हर तरफ़ एक हाहाकार दिखायी देगा, सन्नाटे की तरह गूंजता हाहाकार। उत्सव दुख की गहरी खाई को पार करने के लिये पुल भी बन सकते हैं, पर वैसे उत्सव अब कहां हैं? उनके चारों तरफ ऐसी अदृश्य और अलंघ्य दीवारें खड़ी कर दी गयी हैं कि कोई सामान्य रंगकर्मी उधर झांक भी नहीं सकता। राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय देश का 'विशेष आर्थिक क्षेत्र' यानी स्पर्धा और 'विशेष सांस्कृतिक क्षेत्र' यानी सृष्टि बन कर रह गया है- ऐश्वर्य और ब्राह्मणवादी आभिजात्य का दुर्भेद्य किला! वह दरिद्र और निस्सहाय भारतीय रंगमंच का 'शाइनिंग इण्डिया' है, उत्तर-आधुनिक 'स्मार्ट सिटी' है, जिसमें रहने-जीने वाले 'बुलेट ट्रेन' पर सवार हैं। रंगमंच के इस 'शाइनिंग इण्डिया' को 'ग्लोबल एक्सपोज़र' चाहिये, 'अकूत मुनाफ़ा' चाहिये, जिसके लिये शेष भारत के रंगकर्म को कुचलना जरूरी है। उसे बौद्धिक और आर्थिक उपनिवेश बनाना ज़रूरी है।

ओलम्पिक्स सम्पन्न पश्चिमी देशों की उपभोक्तावादी संस्कृति की श्रेष्ठता को भारतीय रंगमंच पर थोपने की एक क़वायद है, जिसे राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय का ब्राह्मणवादी ढांचा मुक्त स्पेस मुहैय्या करा रहा है। वह इसे 'सार्वजनीन संस्कृति' के पाखण्ड में लपेट कर पेश कर रहा है, पर वास्तविकता यह है कि यह हमारी सांस्कृतिक विभिन्नताओं को या तो नष्ट करेगा या बाहरी तत्वों के घालमेल से उसे भ्रष्ट कर देगा। वैश्विक एनजीओ थियेटर ओलम्पिक्स के भीतर जो साम्राज्यवादी तत्व हैं, उनकी पहचान अब स्पष्ट होने लगी है। यह भारतीय रंगमंच को निष्काषित कर उस पर हावी होना चाहता है।

यह संस्कृति बाज़ार की एक खोज है, जिसका मूलतत्व है विज्ञापन और प्रतिस्पर्धा तथा केन्द्रीय मूल्यबोध है- बाज़ारू लोकप्रियता। मनुष्य उसके हाशिये पर भी नहीं है, और उसके लिये वही रंगमंच श्रेष्ठ और सार्थक है जिसके ग्राहकों की संख्या और आमदनी अधिक हो। उसे हमारी अंतरंग भावनाओं, आकांक्षाओं, ज़रूरतों, संघर्षों और त्रासदियों से कोई वास्ता नहीं है। धीरे-धीरे एक ऐसे रंगमंच को प्रतिष्ठापित करने की मुहिम चलायी जा रही है, जिसके मूल्यांकन का आधार होगा सतही वासनाओं की पूर्ति या चटखारा प्रदान करना। बाज़ारूपन और अपसंस्कृति और किसे कहते हैं?

आप बताइये इस ओलम्पिक्स में कहां हैं हमारी देशज और लोक नाट्य परंपराएं? कहां दिखायी पड़ते हैं हमारे नाटककार, निर्देशक और अभिनेता? कौन हैं वे लोग जो यह सब तय कर रहे हैं? ओलम्पिक्स निश्चित रूप से हमारे सार्थक सांस्कृतिक जीवन के लिये, हमारे रंगमंच के लिये एक बड़ा ख़तरा है, जिसे या तो हम समझना नहीं चाहते, या समझ कर भी एक दुविधा की स्थिति में हैं।

आज पूंजीवादी-उपभोक्तावादी संस्कृति का व्यामोह ऐसा है कि सामने विनाश को देखते हुए भी हममें राह बदलने का साहस नहीं रहा। लेकिन जीवन की इच्छा अंतत: हमें राह बदलने पर मज़बूर करेगी। अपने अस्तित्व की इस चुनौती से हमें टकराना ही होगा। रंगमंच में एक छोटा सा 'बिचौलिया वर्ग' है, जिसमें रातों-रात कुबेर बनने की हवस है। जबकि दूसरी तरफ़ आम रंगकर्मियों का जीवन दूभर है।

इस बिचौलिया वर्ग में दाख़िल होने के लिये लालायित एक और वर्ग है, जो बाज़ार के 'सब चलता है', 'फ़र्क नहीं पड़ता' जैसे नारों से विडम्बनाओं को ढंक देना चाहता है। केदारनाथ सिंह अपनी एक कविता में इस वर्ग को बहुत पहले लक्ष्य कर चुके थे- ''पर सच तो यह है कि यहां/ या कहीं भी फ़र्क नहीं पड़ता/तुमने जहां लिखा है 'प्यार' /वहां लिख दो 'सड़क' /फ़र्क नहीं पड़ता/मेरे युग का मुहाविरा है/फ़र्क नहीं पड़ता!''

रंगमंच को फ़ालतू, पालतू, मनोरंजक या आत्मकेन्द्रित होते जाने से बचाना होगा। आज वह मानवीय संवाद का माध्यम नहीं बन पा रहा। उसकी सामाजिक भूमि और भूमिका ख़तरे में है। हम इस आत्महत्या से अभी भी बच सकते हैं।

भाजपा का पेड लोकतंत्र

गिरीश मालवीय

सोशल मीडिया पर 2 वीडियो इंटरव्यू तेजी से वायरल हो रहे हैं। पहला वीडियो अवि डांडिया का है और दूसरा ध्रुव राठी का। दोनों ही वीडियो में बीजेपी की आई टी सेल का एक ही बन्दा महावीर बैठा हुआ है और वो बीजेपी आई टी सेल के सारे राज फाश कर रहा है, कि कैसे बीजेपी की आईटी सेल में झूठी खबरें फैलाने का काम किया जाता है।

उसका कहना है कि वह बीजेपी के आइ टी सेल में 2012 से 2015 के बीच ट्रोलर की हैसियत से काम कर चुका है और वहां किस तरह से पेजेस बना कर हिन्दू मुस्लिम के बीच घृणा फैलाने का काम किया जाता है इसकी रग रग से वाकिफ है।

महावीर बताता है कि बीजेपी की आईटी सेल में 150 लोग काम करते हैं, उन्हें प्रधानमंत्री से मिलने का मौका मिलता है और उनके द्वारा विशेष कंटेट को ट्रोल किया जाता है और फिर उसे निचली रैंक के सद्स्यों के द्वारा शेयर किया जाता है।

लम्बा इंटरव्यू है आप स्वयं देख कर निर्णय करें ।जहाँ तक मुझे लगता है यह बन्दा सच बोल रहा है क्योंकि जिस तरह की मोडस ऑपरेंडी वो ट्रोलर्स की बता रहा है उस से हम जैसे लोग रोज दो चार होते हैं। सवाल पैदा होता है कि क्या सोशल मीडिया वाकई में इतना महत्वपूर्ण हो गया है कि उस पर इतने ज्यादा पैसे खर्च कर राजनीतिक दल अपनी हवा बनाने और विपक्षियों की हवा खराब करने में यकीन रखते हैं।

दरअसल फेसबुक की नई रिपोर्ट में खुलासा हुआ है कि भारत में फेसबुक के सबसे ज्यादा यूजर्स हैं। भारत ने इस मामले में अमेरिका को पीछे छोड़ा है।

फेसबुक की इस रिपोर्ट के मुताबिक भारत 241 मिलियन (24.1 करोड़) फेसबुक यूजर्स के साथ दुनिया में पहले पायदान पर है, वहीं 240 मिलियन यूजर्स (24 करोड़) के साथ अमेरिका दूसरे नंबर हैं। 2014 में अमेरिका पहले नम्बर पर था, अब 2018 में भारत में सबसे बड़ा फेसबुक का नेटवर्क है।

राजनीतिक दलों को जो सबसे ज्यादा आकर्षक बात लगती है वो ये है कि भारत में फेसबुक के 50 फीसदी से ज्यादा यूजर्स की उम्र 30 साल से कम है।

अब आप देखिए कितना पोटेंशियल है इस सोशल मीडिया में। आपको जो लिखना है जिसका चरित्र हनन करना हो जिस धर्म को नीचा दिखाना हो कितनी आसानी से यह सब किया जा सकता है।

आप यदि सोच रहे हैं कि दल सिर्फ चुनाव जीतने के लिए इतनी मेहनत कर रहे, तो आप गलत सोच रहे हैं। यह एक पीढ़ी के दिमाग मे ऐसा जहर भर रहे जो सिर्फ 5 सालो के लिए नही सदा के लिए उसे अपना गुलाम बना कर रखेगा।

यह सिर्फ भारत मे ही नही हुआ। यह प्रवृत्ति वैश्विक रूप अख्तियार कर चुकी है। 2008 का अमेरिकी राष्ट्रपति चुनाव वह पहला चुनाव था, जिसके बारे में कहा गया था कि इसे सोशल मीडिया पर लड़ा गया। ओर उसके बाद के हर राष्ट्रपति चुनाव में सोशल मीडिया सबसे अहम भूमिका निभाता हुआ आ रहा है।

अपनी छवि के निर्माण के लिए पार्टियां अब पी आर एजंसियों को हायर करती हैं। पीआर कंपनियों का काम होता है 'ब्रांडिंग और इमेज बिल्डिंग' जिससे नेताओं या पार्टी की समाज में सकारात्मक छवि बनायी जा सके और उसके सहारे 'चुनावी' नैय्या पार हो सके! इसकी कार्यप्रणाली की बात करें तो, पीआर कंपनियां जनता या टार्गेट ऑडियंस के मन में किसी भी पार्टी की सकारात्मक इमेज बनाने में सक्षम होती हैं और इसके लिए, गलत या सही तरीके से टार्गेट ऑडियंस को प्रभावित करने वाले लोगों और चीजों पर उनका ध्यान सर्वाधिक होता है।

ये एजेंसिया अब सबसे ज्यादा सोशल मीडिया को महत्व देती हैं जहाँ मैन टू मैंन कॉन्टेक्ट सबसे अधिक प्रभावी ढंग से होता है।

पी आर एजेंसियां अब यह तक डिसाइड करती हैं कि मंत्री ट्वीट क्या करेंगे, महावीर जैसे ट्रोलर्स क्या ट्वीट करंगे क्या स्टेटस डालेंगे यह भी पी आर एजेंसी ही तय करती हैं। कभी इस क्रम में गड़बड़ी हो जाती है जिससे ये एजेंसिया एक्सपोज हो जाती हैं।

उदाहरण के लिए आप देखिए कि नोटबन्दी के बाद 2017 आरबीआई की रिपोर्ट में कहा गया कि 99 फीसदी बैन किए गए नोट वापस आ गए हैं। इसके बाद नोटबंदी के मकसद को लेकर सरकार पर सवाल उठने शुरू हो गए। तुंरन्त सरकार के कई मंत्रियों को नोटबंदी को सफल बताने के कार्य मे लगाया गया और मंत्रियों द्वारा एक के बाद एक ट्वीट किये गए। लेकिन कई मंत्रियों के ट्वीट हूबहू एक दूसरे से मिलते-जुलते थे। इससे यह साफ हो गया कि इन मंत्रियों के ट्विटर हैंडल एक ही जगह से ऑपरेट किये जा रहे हैं।

दरअसल पी आर एजेंसिया ही लोकतंत्र की दशा और दिशा तय कर रही हैं।